## सुमंत्र का लौटना

चौपाई :

*** सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय रघुबीर चरन रत होहू॥ कहत राम गुन भा भिनुसारा। जागे जग मंगल सुखदारा॥1॥

भावार्थ:

हे सखा! ऐसा समझ, मोह को त्यागकर श्री सीतारामजी के चरणों में प्रेम करो। इस प्रकार श्री रामचन्द्रजी के गुण कहते-कहते सबेरा हो गया! तब जगत का मंगल करने वाले और उसे सुख देने वाले श्री रामजी जागे॥1॥

*** सकल सौच करि राम नहावा। सुचि सुजान बट छीर मगावा॥ अनुज सहित सिर जटा बनाए। देखि सुमंत्र नयन जल छाए॥

भावार्थ:

शौच के सब कार्य करके (नित्य) पवित्र और सुजान श्री रामचन्द्रजी ने स्नान किया। फिर बड़ का दूध मँगाया और छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित उस दूध से सिर पर जटाएँ बनाईं। यह देखकर सुमंत्रजी के नेत्रों में जल छा गया॥2॥

*** हृदयँ दाहु अति बदन मलीना। कह कर जोर बचन अति दीना॥ नाथ कहेउ अस कोसलनाथा। लै रथु जाहु राम कें साथा॥3॥

भावार्थ:

उनका हृदय अत्यंत जलने लगा, मुँह मलिन (उदास) हो गया। वे हाथ जोड़कर अत्यंत दीन वचन बोले- हे नाथ! मुझे कौसलनाथ दशरथजी ने ऐसी आज्ञा दी थी कि तुम रथ लेकर श्री रामजी के साथ जाओ,॥3॥

*** बनु देखाइ सुरसरि अन्हवाई। आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई॥ लखनु रामु सिय आनेहु फेरी। संसय सकल सँकोच निबेरी॥4॥

भावार्थ:

वन दिखाकर, गंगा स्नान कराकर दोनों भाइयों को तुरंत लौटा लाना। सब संशय और संकोच को दूर करके लक्ष्मण, राम, सीता को फिरा लाना॥4॥

दोहा :

*** नृप अस कहेउ गोसाइँ जस कहइ करौं बलि सोइ। करि बिनती पायन्ह परेउ दीन्ह बाल जिमि रोइ॥94॥

भावार्थ:

महाराज ने ऐसा कहा था, अब प्रभु जैसा कहें, मैं वही करूँ, मैं आपकी बलिहारी हूँ। इस प्रकार से

विनती करके वे श्री रामचन्द्रजी के चरणों में गिर पड़े और बालक की तरह रो दिए॥94॥

चौपाई :

*** तात कृपा करि कीजिअ सोई। जातें अवध अनाथ न होई॥ मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा। तात धरम मतु तुम्ह सबु सोधा॥1॥

भावार्थ:

(और कहा -) हे तात ! कृपा करके वही कीजिए जिससे अयोध्या अनाथ न हो श्री रामजी ने मंत्री को उठाकर धैर्य बँधाते हुए समझाया कि हे तात ! आपने तो धर्म के सभी सिद्धांतों को छान डाला है॥1॥

*** सिबि दधीच हरिचंद नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा॥ रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरमु धरेउ सहि संकट नाना॥2॥

भावार्थ:

शिबि, दधीचि और राजा हरिश्चन्द्र ने धर्म के लिए करोड़ों (अनेकों) कष्ट सहे थे। बुद्धिमान राजा रन्तिदेव और बलि बहुत से संकट सहकर भी धर्म को पकड़े रहे(उन्होंने धर्म का परित्याग नहीं किया)॥2॥

*** धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना॥ मैं सोइ धरमु सुलभ करि पावा। तजें तिहूँ पुर अपजसु छावा॥3॥

भावार्थ:

वेद, शास्त्र और पुराणों में कहा गया है कि सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं है। मैंने उस धर्म को सहज ही पा लिया है। इस (सत्य रूपी धर्म) का त्याग करने से तीनों लोकों में अपयश छा जाएगा॥3॥

*** संभावित कहुँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू॥ तुम्ह सन तात बहुत का कहउँ। दिएँ उतरु फिरि पातकु लहऊँ॥4॥

भावार्थ:

प्रतिष्ठित पुरुष के लिए अपयश की प्राप्ति करोड़ों मृत्यु के समान भीषण संताप देने वाली है। हे तात! मैं आप से अधिक क्या कहूँ! लौटकर उत्तर देने में भी पाप का भागी होता हूँ॥4॥

दोहा :

*** पितु पद गहि कहि कोटि नति बिनय करब कर जोरि। चिंता कवनिहु बात कै तात करिअ जनि मोरि॥95॥

भावार्थ:

आप जाकर पिताजी के चरण पकड़कर करोड़ों नमस्कार के साथ ही हाथ जोड़कर बिनती करिएगा कि हे तात! आप मेरी किसी बात की चिन्ता न करें॥95॥

चौपाई :

*** तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरें। बिनती करउँ तात कर जोरें॥ सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारें। दुख न पाव पितु सोच हमारें॥1॥

भावार्थ:

आप भी पिता के समान ही मेरे बड़े हितैषी हैं। हे तात! मैं हाथ जोड़कर आप से विनती करता हूँ कि आपका भी सब प्रकार से वही कर्तव्य है, जिसमें पिताजी हम लोगों के सोच में दुःख न पावें॥1॥

*** सुनि रघुनाथ सचिव संबादू। भयउ सपरिजन बिकल निषादू॥ पुनि कछु लखन कही कटु बानी। प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी॥2॥

भावार्थ:

श्री रघुनाथजी और सुमंत्र का यह संवाद सुनकर निषादराज कुटुम्बियों सहित व्याकुलहो गया। फिर लक्ष्मणजी ने कुछ कड़वी बात कही। प्रभु श्री रामचन्द्रजी नेउसे बहुत ही अनुचित जानकर उनको मना किया॥2॥

*** सकुचि राम निज सपथ देवाई। लखन सँदेसु कहिअ जनि जाई॥ कह सुमंत्रु पुनि भूप सँदेसू। सहि न सकिहि सिय बिपिन कलेसू॥3॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी ने सकुचाकर, अपनी सौगंध दिलाकर सुमंत्रजी से कहा कि आप जाकर लक्ष्मण का यह संदेश न कहिएगा। सुमंत्र ने फिर राजा का संदेश कहा कि सीता वन के क्लेश न सह सकेंगी॥3॥

*** जेहि बिधि अवध आव फिरि सीया। होइ रघुबरहि तुम्हहि करनीया॥ नतरु निपट अवलंब बिहीना। मैं न जिअब जिमि जल बिनु मीना॥4॥

भावार्थ:

अतएव जिस तरह सीता अयोध्या को लौट आवें, तुमको और श्री रामचन्द्र को वही उपाय करना चाहिए। नहीं तो मैं बिल्कुल ही बिना सहारे का होकर वैसे ही नहीं जीऊँगा जैसे बिना जल के मछली नहीं जीती॥4॥

दोहा :

*** मइकें ससुरें सकल सुख जबहिं जहाँ मनु मान। तहँ तब रहिहि सुखेन सिय जब लगि बिपति बिहान॥96॥

भावार्थ:

सीता के मायके (पिता के घर) और ससुराल में सब सुख हैं। जब तक यह विपत्ति दूर नहीं होती, तब तक वे जब जहाँ जी चाहें, वहीं सुख से रहेंगी॥96॥

चौपाई :

*** बिनती भूप कीन्ह जेहि भाँती। आरति प्रीति न सो कहि जाती॥ पितु सँदेसु सुनि

कृपानिधाना। सियहि दीन्ह सिख कोटि बिधाना॥1॥

भावार्थ:

राजा ने जिस तरह (जिस दीनता और प्रेम से) विनती की है, वह दीनता और प्रेम कहा नहीं जा सकता। कृपानिधान श्री रामचन्द्रजी ने पिता का संदेश सुनकर सीताजी को करोड़ों (अनेकों) प्रकार से सीख दी॥1॥

*** सासु ससुर गुर प्रिय परिवारू। फिरहु त सब कर मिटै खभारू॥ सुनि पति बचन कहति बैदेही। सुनहु प्रानपति परम सनेही॥2॥

भावार्थ:

(उन्होंने कहा-) जो तुम घर लौट जाओ, तो सास, ससुर, गुरु, प्रियजन एवं कुटुम्बी सबकी चिन्ता मिट जाए। पति के वचन सुनकर जानकीजी कहती हैं- हे प्राणपति! हे परम स्नेही! सुनिए॥2॥

*** प्रभु करुनामय परम बिबेकी। तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी॥ प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चंद्रिका चंदु तजि जाई॥3॥

भावार्थ:

हे प्रभो! आप करुणामय और परम ज्ञानी हैं। (कृपा करके विचार तो कीजिए) शरीर को छोड़कर छाया अलग कैसे रोकी रह सकती है? सूर्य की प्रभा सूर्य को छोड़कर कहाँ जा सकती है? और चाँदनी चन्द्रमा को त्यागकर कहाँ जा सकती है?॥3॥

*** पतिहि प्रेममय बिनय सुनाई। कहति सचिव सन गिरा सुहाई॥ तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी। उतरु देउँ फिरि अनुचित भारी॥4॥

भावार्थ:

इस प्रकार पति को प्रेममयी विनती सुनाकर सीताजी मंत्री से सुहावनी वाणी कहने लगीं- आप मेरे पिताजी और ससुरजी के समान मेरा हित करने वाले हैं। आपको मैं बदले में उत्तर देती हूँ, यह बहुत ही अनुचित है॥4॥

दोहा :

*** आरति बस सनमुख भइउँ बिलगु न मानब तात। आरजसुत पद कमल बिनु बादि जहाँ लगि नात॥97॥

भावार्थ:

किन्तु हे तात! मैं आर्त्त होकर ही आपके सम्मुख हुई हूँ आप बुरा न मानिएगा। आर्यपुत्र (स्वामी) के चरणकमलों के बिना जगत में जहाँ तक नाते हैं, सभी मेरे लिए व्यर्थ हैं॥97॥

चौपाई :

*** पितु बैभव बिलास मैं डीठा। नृप मनि मुकुट मिलित पद पीठा॥ सुखनिधान अस पितु गृह मोरें। पिय बिहीन मन भाव न भोरें॥1॥

भावार्थ:

मैंने पिताजी के ऐश्वर्य की छटा देखी है, जिनके चरण रखने की चौकी से सर्वशिरोमणि राजाओं के मुकुट मिलते हैं (अर्थात बड़े-बड़े राजा जिनके चरणों में प्रणाम करते हैं) ऐसे पिता का घर भी, जो सब प्रकार के सुखों का भंडार है, पति के बिना मेरे मन को भूलकर भी नहीं भाता॥1॥

*** ससुर चक्कवइ कोसल राऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥ आगें होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिंघासन आसनु देई॥2॥

भावार्थ:

मेरे ससुर कोसलराज चक्रवर्ती सम्राट हैं, जिनका प्रभाव चौदहों लोकों में प्रकट है, इन्द्र भी आगे होकर जिनका स्वागत करता है और अपने आधे सिंहासन पर बैठने के लिए स्थान देता है,॥2॥

*** ससुरु एतादृस अवध निवासू। प्रिय परिवारु मातु सम सासू॥ बिनु रघुपति पद पदुम परागा। मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा॥3॥

भावार्थ:

ऐसे (ऐश्वर्य और प्रभावशाली) ससुर, (उनकी राजधानी) अयोध्या का निवास, प्रिय कुटुम्बी और माता के समान सासुएँ- ये कोई भी श्री रघुनाथजी के चरण कमलों की रज के बिना मुझे स्वप्न में भी सुखदायक नहीं लगते॥3॥

*** अगम पंथ बनभूमि पहारा। करि केहरि सर सरित अपारा॥ कोल किरात कुरंग बिहंगा। मोहि सब सुखद प्रानपति संगा॥4॥

भावार्थ:

दुर्गम रास्ते, जंगली धरती, पहाड़, हाथी, सिंह, अथाह तालाब एवं नदियाँ, कोल, भील, हिरन और पक्षी- प्राणपति (श्री रघुनाथजी) के साथ रहते ये सभी मुझे सुख देने वाले होंगे॥4॥

दोहा :

*** सासु ससुर सन मोरि हुँति बिनय करबि परि पायँ। मोर सोचु जनि करिअ कछु मैं बन सुखी सुभायँ॥98॥

भावार्थ:

अतः सास और ससुर के पाँव पड़कर, मेरी ओर से विनती कीजिएगा कि वे मेरा कुछ भी सोच न करें, मैं वन में स्वभाव से ही सुखी हूँ॥98॥

चौपाई :

*** प्राननाथ प्रिय देवर साथा। बीर धुरीन धरें धनु भाथा॥ नहिं मग श्रमु भ्रमु दुख मन मोरें। मोहि लगि सोचु करिअ जनि भोरें॥1॥

भावार्थ:

वीरों में अग्रगण्य तथा धनुष और (बाणों से भरे) तरकश धारण किए मेरे प्राणनाथ और प्यारे देवर साथ हैं। इससे मुझे न रास्ते की थकावट है, न भ्रम है और न मेरे मन में कोई दुःख ही है। आप मेरे लिए भूलकर भी सोच न करें॥1॥

*** सुनि सुमंत्रु सिय सीतलि बानी। भयउ बिकल जनु फनि मनि हानी॥ नयन सूझ नहिं सुनइ न काना। कहि न सकइ कछु अति अकुलाना॥2॥

भावार्थ:

सुमंत्र सीताजी की शीतल वाणी सुनकर ऐसे व्याकुल हो गए जैसे साँप मणि खो जाने पर। नेत्रों से कुछ सूझता नहीं, कानों से सुनाई नहीं देता। वे बहुत व्याकुल होगए, कुछ कह नहीं सकते॥2॥

*** राम प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। तदपि होति नहिं सीतलि छाती॥ जतन अनेक साथ हित कीन्हे। उचित उतर रघुनंदन दीन्हे॥3॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी ने उनका बहुत प्रकार से समाधान किया। तो भी उनकी छाती ठंडी न हुई। साथ चलने के लिए मंत्री ने अनेकों यत्न किए (युक्तियाँ पेश कीं), पर रघुनंदन श्री रामजी (उन सब युक्तियों का) यथोचित उत्तर देते गए॥3॥

*** मेटि जाइ नहिं राम रजाई। कठिन करम गति कछु न बसाई॥ राम लखन सिय पद सिरु नाई। फिरेउ बनिक जिमि मूर गवाँई॥4॥

भावार्थ:

श्री रामजी की आज्ञा मेटी नहीं जा सकती। कर्म की गति कठिन है, उस पर कुछ भी वश नहीं चलता। श्री राम, लक्ष्मण और सीताजी के चरणों में सिर नवाकर सुमंत्र इस तरह लौटे जैसे कोई व्यापारी अपना मूलधन (पूँजी) गँवाकर लौटे॥4॥

दोहा :

*** रथु हाँकेउ हय राम तन हेरि हेरि हिहिनाहिं। देखि निषाद बिषाद बस धुनहिं सीस पछिताहिं॥99॥

भावार्थ:

सुमंत्र ने रथ को हाँका, घोड़े श्री रामचन्द्रजी की ओर देख-देखकर हिनहिनाते हैं। यह देखकर निषाद लोग विषाद के वश होकर सिर धुन-धुनकर (पीट-पीटकर) पछताते हैं॥99॥

## केवट का प्रेम और गंगा पार जाना

चौपाई :

*** जासु बियोग बिकल पसु ऐसें। प्रजा मातु पितु जिइहहिं कैसें॥ बरबस राम सुमंत्रु पठाए। सुरसरि तीर आपु तब आए॥1॥

भावार्थ:

जिनके वियोग में पशु इस प्रकार व्याकुल हैं, उनके वियोग में प्रजा, माता और पिता कैसे जीते

रहेंगे? श्री रामचन्द्रजी ने जबर्दस्ती सुमंत्र को लौटाया। तब आप गंगाजी के तीर पर आए॥1॥

*** मागी नाव न केवटु आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना॥ चरन कमल रज कहुँ सबु कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई॥2॥

भावार्थ:

श्री राम ने केवट से नाव माँगी, पर वह लाता नहीं। वह कहने लगा- मैंने तुम्हारा मर्म (भेद) जान लिया। तुम्हारे चरण कमलों की धूल के लिए सब लोग कहते हैं कि वह मनुष्य बना देने वाली कोई जड़ी है,॥2॥

*** छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई॥ तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई॥3॥

भावार्थ:

जिसके छूते ही पत्थर की शिला सुंदरी स्त्री हो गई (मेरी नाव तो काठ की है)। काठ पत्थर से कठोर तो होता नहीं। मेरी नाव भी मुनि की स्त्री हो जाएगी और इस प्रकार मेरी नाव उड़ जाएगी, मैं लुट जाऊँगा (अथवा रास्ता रुक जाएगा, जिससे आप पार न हो सकेंगे और मेरी रोजी मारी जाएगी) (मेरी कमाने-खाने की राह ही मारी जाएगी)॥3॥

*** एहिं प्रतिपालउँ सबु परिवारू। नहिं जानउँ कछु अउर कबारू॥ जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥4॥

भावार्थ:

मैं तो इसी नाव से सारे परिवार का पालन-पोषण करता हूँ। दूसरा कोई धंधा नहीं जानता। हे प्रभु! यदि तुम अवश्य ही पार जाना चाहते हो तो मुझे पहले अपने चरणकमल पखारने (धो लेने) के लिए कह दो॥4॥ छन्द :

*** पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं। मोहि राम राउरि आन दसरथसपथ सब साची कहौं॥ बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं। तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं॥

भावार्थ:

हे नाथ! मैं चरण कमल धोकर आप लोगों को नाव पर चढ़ा लूँगा, मैं आपसे कुछ उतराई नहीं चाहता। हे राम! मुझे आपकी दुहाई और दशरथजी की सौगंध है, मैं सब सच-सच कहता हूँ। लक्ष्मण भले ही मुझे तीर मारें, पर जब तक मैं पैरों को पखार न लूँगा, तब तक हे तुलसीदास के नाथ! हे कृपालु! मैं पार नहीं उतारूँगा। सोरठा :

*** सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे। बिहसे करुनाऐन चितइ जानकी लखन तन॥100॥

भावार्थ:

केवट के प्रेम में लपेटे हुए अटपटे वचन सुनकर करुणाधाम श्री रामचन्द्रजी जानकीजी और लक्ष्मणजी की ओर देखकर हँसे॥100॥

चौपाई :

*** कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई॥ बेगि आनु जलपाय पखारू। होत बिलंबु उतारहि पारू॥1॥

भावार्थ:

कृपा के समुद्र श्री रामचन्द्रजी केवट से मुस्कुराकर बोले भाई! तू वही कर जिससे तेरी नाव न जाए। जल्दी पानी ला और पैर धो ले। देर हो रही है, पार उतार दे॥1॥

*** जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा॥ सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा॥2॥

भावार्थ:

एक बार जिनका नाम स्मरण करते ही मनुष्य अपार भवसागर के पार उतर जाते हैं और जिन्होंने (वामनावतार में) जगत को तीन पग से भी छोटा कर दिया था (दो ही पग में त्रिलोकी को नाप लिया था), वही कृपालु श्री रामचन्द्रजी (गंगाजी से पार उतारने के लिए) केवट का निहोरा कर रहे हैं!॥2॥

*** पद नख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभु बचन मोहँ मति करषी॥ केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा॥3॥

भावार्थ:

प्रभु के इन वचनों को सुनकर गंगाजी की बुद्धि मोह से खिंच गई थी (कि ये साक्षात भगवान होकर भी पार उतारने के लिए केवट का निहोरा कैसे कर रहे हैं), परन्तु (समीप आने पर अपनी उत्पत्ति के स्थान) पदनखों को देखते ही (उन्हें पहचानकर) देवनदी गंगाजी हर्षित हो गईं। (वे समझ गईं कि भगवान नरलीला कर रहे हैं, इससे उनका मोह नष्ट हो गया और इन चरणों का स्पर्श प्राप्त करके मैं धन्य होऊँगी, यह विचारकर वे हर्षित हो गईं।) केवट श्री रामचन्द्रजी की आज्ञा पाकर कठौते में भरकर जल ले आया॥3॥

*** अति आनंद उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा॥ बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं॥4॥

भावार्थ:

अत्यन्त आनंद और प्रेम में उमंगकर वह भगवान के चरणकमल धोने लगा। सब देवता फूल बरसाकर सिहाने लगे कि इसके समान पुण्य की राशि कोई नहीं है॥4॥

दोहा :

*** पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार। पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार॥101॥

भावार्थ:

चरणों को धोकर और सारे परिवार सहित स्वयं उस जल (चरणोदक) को पीकर पहले (उस महान

पुण्य के द्वारा) अपने पितरों को भवसागर से पार कर फिर आनंदपूर्वक प्रभु श्री रामचन्द्रजी को गंगाजी के पार ले गया॥101॥

चौपाई :

*** उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता। सीय रामु गुह लखन समेता॥ केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा॥1॥

भावार्थ:

निषादराज और लक्ष्मणजी सहित श्री सीताजी और श्री रामचन्द्रजी (नाव से) उतरकर गंगाजी की रेत (बालू) में खड़े हो गए। तब केवट ने उतरकर दण्डवत की। (उसको दण्डवत करते देखकर) प्रभु को संकोच हुआ कि इसको कुछ दियानहीं॥1॥

*** पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी॥ कहेउ कृपाल लेहि उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई॥2॥

भावार्थ:

पति के हृदय की जानने वाली सीताजी ने आनंद भरे मन से अपनी रत्न जड़ित अँगूठी (अँगुली से) उतारी। कृपालु श्री रामचन्द्रजी ने केवट से कहा, नाव की उतराई लो। केवट ने व्याकुल होकर चरण पकड़ लिए॥2॥

*** नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा॥ बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी॥3॥

भावार्थ:

(उसने कहा-) हे नाथ! आज मैंने क्या नहीं पाया! मेरे दोष, दुःख और दरिद्रता की आग आज बुझ गई है। मैंने बहुत समय तक मजदूरी की। विधाता ने आज बहुत अच्छीभरपूर मजदूरी दे दी॥3॥

*** अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें। दीन दयाल अनुग्रह तोरें॥ फिरती बार मोहि जो देबा। सो प्रसादु मैं सिर धरि लेबा॥4॥

भावार्थ:

हे नाथ! हे दीनदयाल! आपकी कृपा से अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। लौटती बार आप मुझे जो कुछ देंगे, वह प्रसाद मैं सिर चढ़ाकर लूँगा॥4॥

दोहा :

*** बहुत कीन्ह प्रभु लखनसियँ नहिं कछु केवटु लेइ। बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ॥102॥

भावार्थ:

प्रभु श्री रामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी ने बहुत आग्रह (या यत्न) किया, पर केवट कुछ नहीं लेता। तब करुणा के धाम भगवान श्री रामचन्द्रजी ने निर्मल भक्ति का वरदान देकर उसे विदा किया॥102॥

चौपाई :

*** तब मज्जनु करि रघुकुलनाथा। पूजि पारथिव नायउ माथा॥ सियँ सुरसरिहि कहेउ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउबि मोरी॥1॥

भावार्थ:

फिर रघुकुल के स्वामी श्री रामचन्द्रजी ने स्नान करके पार्थिव पूजा की और शिवजी को सिर नवाया। सीताजी ने हाथ जोड़कर गंगाजी से कहा- हे माता! मेरा मनोरथ पूरा कीजिएगा॥1॥

*** पति देवर सँग कुसल बहोरी। आइ करौं जेहिं पूजा तोरी॥ सुनि सिय बिनय प्रेम रस सानी। भइ तब बिमल बारि बर बानी॥2॥

भावार्थ:

जिससे मैं पति और देवर के साथ कुशलतापूर्वक लौट आकर तुम्हारी पूजा करूँ। सीताजीकी प्रेम रस में सनी हुई विनती सुनकर तब गंगाजी के निर्मल जल में सेश्रेष्ठ वाणी हुई॥2॥

*** सुनु रघुबीर प्रिया बैदेही। तब प्रभाउ जग बिदित न केही॥ लोकप होहिं बिलोकत तोरें। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरें॥3॥

भावार्थ:

हे रघुवीर की प्रियतमा जानकी! सुनो, तुम्हारा प्रभाव जगत में किसे नहीं मालूम है? तुम्हारे (कृपा दृष्टि से) देखते ही लोग लोकपाल हो जाते हैं। सब सिद्धियाँ हाथ जोड़े तुम्हारी सेवा करती हैं॥3॥

*** तुम्ह जो हमहि बड़ि बिनय सुनाई। कृपा कीन्हि मोहि दीन्हि बड़ाई॥ तदपि देबि मैं देबि असीसा। सफल होन हित निज बागीसा॥4॥

भावार्थ:

तुमने जो मुझको बड़ी विनती सुनाई, यह तो मुझ पर कृपा की और मुझे बड़ाई दी है। तो भी हे देवी! मैं अपनी वाणी सफल होने के लिए तुम्हें आशीर्वाद दूँगी॥4॥

दोहा :

*** प्राननाथ देवर सहित कुसल कोसला आइ। पूजिहि सब मनकामना सुजसु रहिहि जग छाइ॥103॥

भावार्थ:

तुम अपने प्राणनाथ और देवर सहित कुशलपूर्वक अयोध्या लौटोगी। तुम्हारी सारी मनःकामनाएँ पूरी होंगी और तुम्हारा सुंदर यश जगतभर में छा जाएगा॥103॥

चौपाई :

*** गंग बचन सुनि मंगल मूला। मुदित सीय सुरसरि अनुकूला॥ तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाहू। सुनत सूख मुखु भा उर दाहू॥1॥

भावार्थ:

मंगल के मूल गंगाजी के वचन सुनकर और देवनदी को अनुकूल देखकर सीताजी आनंदित हुईं।

तब प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने निषादराज गुह से कहा कि भैया! अब तुम घर जाओ! यह सुनते ही उसका मुँह सूख गया और हृदय में दाह उत्पन्न हो गया॥1॥

*** दीन बचन गुह कह कर जोरी। बिनय सुनहु रघुकुलमनि मोरी॥ नाथ साथ रहि पंथु देखाई। करि दिन चारि चरन सेवकाई॥2॥

भावार्थ:

गुह हाथ जोड़कर दीन वचन बोला- हे रघुकुल शिरोमणि! मेरी विनती सुनिए। मैं नाथ (आप) के साथ रहकर, रास्ता दिखाकर, चार (कुछ) दिन चरणों की सेवा करके-॥2॥

*** जेहिं बन जाइ रहब रघुराई। परनकुटी मैं करबि सुहाई॥ तब मोहि कहँ जसि देब रजाई। सोइ करिहउँ रघुबीर दोहाई॥3॥

भावार्थ:

हे रघुराज! जिस वन में आप जाकर रहेंगे, वहाँ मैं सुंदर पर्णकुटी (पत्तों की कुटिया) बना दूँगा। तब मुझे आप जैसी आज्ञा देंगे, मुझे रघुवीर (आप) की दुहाई है, मैं वैसा ही करूँगा॥3॥

*** सहज सनेह राम लखि तासू। संग लीन्ह गुह हृदयँ हुलासू॥ पुनि गुहँ ग्याति बोलि सब लीन्हे। करि परितोषु बिदा तब कीन्हे॥4॥

भावार्थ:

उसके स्वाभाविक प्रेम को देखकर श्री रामचन्द्रजी ने उसको साथ ले लिया, इससे गुह के हृदय में बड़ा आनंद हुआ। फिर गुह (निषादराज) ने अपनी जाति के लोगों को बुला लिया और उनका संतोष कराके तब उनको विदा किया॥4॥

दोहा :

*** तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माथ। सखा अनुज सिय सहित बन गवनु कीन्ह रघुनाथ॥104॥

भावार्थ:

तब प्रभु श्री रघुनाथजी गणेशजी और शिवजी का स्मरण करके तथा गंगाजी को मस्तक नवाकर सखा निषादराज, छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजी सहित वन को चले॥104॥